Gyanvividha, Vol.-2; Issue-2 (Apr.-June) 2025 : PP-59-64

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-2 (Apr.-June) 2025
Page No.- 59-64
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

डॉ. रजनी
सहायक प्रवक्ता
हिन्दी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला.

Corresponding Author :

डॉ. रजनी
सहायक प्रवक्ता
हिन्दी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला.

तृतीय लिंग की संवेदना और समकालीन हिन्दी कहानी

मानव जाति के विकास की लम्बी परम्परा और प्रक्रिया है। आज मानव जिस स्तर पर पहुंच चुका है, वहां तक पहुंचने के लिए उसने कई चुनौतियों का सामना किया है। डार्विन के विकासवादी सिद्धांत से मानवीय जीवन के विकास के पड़ावों का आकलन किया जा सकता है। मानव ने इन विभिन्न चरणों को अपनी क्षमता और विवेक से पार किया। इन चरणों का पार करने के लिए मानव ने संघर्ष को सहर्ष ही स्वीकार किया है। डार्विनवाद के चिंतक हर्बट स्पेन्सर द्वारा प्रयुक्त की गई उक्ति 'योग्यतम की उत्तरजीविता' (Survival of the Fittest) ने मानव को संघर्षशीलता का सिद्धांत दिया। जैव-विज्ञान का यह सिद्धांत एक साधारण मानव के सामाजिक जीवन पर भी लागू होता है। मानवीय समाज में स्वयं के अस्तित्व की प्रतिस्थापना के लिए संघर्षशील होना अत्यावश्यक बन चुका है। यह संघर्षशीलता समाज के प्रत्येक क्षेत्र यथा- धर्म, राजनीति, अर्थ-जगत, सांस्कृतिक आदि सभी में परिलक्षित होती है। इसलिए आज मानव स्व की स्थापना के लिए निरंतर अपने प्रतिद्वंदियों से संघर्ष कर रहा है। परन्तु समाज में एक ऐसा वर्ग है जिसे स्वयं से ही संघर्ष करना पड़ रहा है। वह किसी राजनैतिक मंशा, आर्थिक लाभ, सामाजिक पद की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष नहीं कर रहा, अपितु वह स्वयं को समाज में एक सामान्य मानव की भांति स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहा है।

समाज के निर्माण में स्त्री और पुरुष की एक समान भागीदारी मानी जाती है, परन्तु एक वर्ग ऐसा है, जो समाज का हिस्सा होकर भी सामान्य समाज में विचरण नहीं करता। यह वर्ग है - तृतीय लिंगी वर्ग, जो न तो पुरुष है और न ही स्त्री। परन्तु मानव योनि में जन्म लेने के कारण संवेदना के धरातल पर यह पुरुष और स्त्री के समान ही संवेदनशील है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि साहित्य में ब्राह्मण्ड के प्रत्येक अंश को स्थान मिला है, परन्तु किन्नर वर्ग काफी समय तक साहित्य के केन्द्र से बाहर रहा है। सौभाग्यवश नई सदी के हिन्दी साहित्य में किन्नर वर्ग के चित्र यत्र-तत्र दिखाई देने लग गए हैं।

किन्नर वर्ग के ऐतिहासिक संदर्भ पौराणिक आख्यानों में यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जैसे "महाभारत में भी शिखंडी नामक किन्नर योद्धा था जिसकी मदद से अर्जुन ने भीष्म पितामह का वध किया था। कहा जाता है कि अर्जुन ने भी अपने अज्ञातवास का एक वर्ष वृहन्नला नाम से किन्नर का रूप धारण करके बिताया था।"[1] इसके अतिरिक्त कृष्ण के स्त्रीयोचित रूप धारण करने का प्रसंग भी प्रचलित है। "पांडवों को कुरुक्षेत्र के युद्ध में अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए किसी अच्छे योद्धा की बलि मां काली के चरणों में दी जानी थी, जिसके लिए अर्जुन व नागकन्या से उत्पन्न पुत्र अर्वान स्वयं की बलि हेतु प्रस्तुत हुआ। अर्वान ने यह शर्त रखी कि वह अपनी बलि देने से पूर्व की रात एक सुंदर स्त्री से विवाह करेगा। ऐसे वर से विवाह हेतु कोई स्त्री राजी नहीं हुई ; जिसकी मृत्यु अगले दिन सुनिश्चित हो। विष्णु अवतार भगवान कृष्ण ने एक सुंदर स्त्री 'माहिनी' का रूप धारण कर अर्जुन पुत्र अर्वान से विवाह किया।"[2] इसीलिए किन्नर कृष्ण के उपासक होते हैं और कृष्ण को पति रूप में स्वीकार करते हैं। इन सभी प्रसंगों में किन्नर वर्ग के जीवन प्रामाणिक सूत्र अन्वेषित किए जा सकते हैं।

पौराणिक संदर्भों के अतिरिक्त भारतीय मध्यकाल में भी किन्नर जीवन की झांकी देखने को मिलती है। मुगल राजाओं के महलों में हिजड़े रनिवास में रक्षकों की भूमिका निभाते थे, क्योंकि अपनी मांसल क्षमता के कारण वह शारीरिक रूप से शक्तिशाली होते थे और यौनिक क्रियाओं में अक्षम होने के कारण रनिवास की स्त्रियों यौनिक संदर्भ में भी सुरक्षित मानी जाती थी। "पुराने जमाने में हमारे जैसे लोग 'ख्वाजा सरा' कहलाते थे और बादशाहों के महलों, हवेलियों में रहते थे। मन्दिर-मस्जिद की पहरेदारी या जनानखानों की रखवाली के साथ-साथ हमारा काम था- इधर-उधर की गप्पबाजियों और अफवाहों को सुनकर राजा को बतलाना।"[3]

मध्यकाल में इनका जीवन दयनीय तो नहीं था, परन्तु सामान्य मानव की भांति भी नहीं था। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है मध्यकाल में किन्नरों का जीवन बहुत भव्य नहीं था। इन पौराणिक संदर्भों के अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी किन्नर वर्ग के संदर्भों को रेखांकित किया जा सकता है।

विगत शताब्दी का साहित्य सामाजिक यथार्थ, सामाजिक विसंगतियों, सामाजिक असमान-ताओं को उजागर करने वाला साहित्य था। उत्तर आधुनिकता के कारण हाशिये के वर्ग साहित्य के केन्द्रीय विषय के रूप में उभर कर सामने आए, जिसके परिणामस्वरूप साहित्य नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि खण्डों में सामने आया, परन्तु 20वीं शताब्दी के साहित्य में एक वर्ग उभर नहीं पाया- वह था तृतीय लिंगी वर्ग। 21वीं शताब्दी के साहित्य में इस विमर्श की अनुगूंज सुनाई देने लगी है। 21वीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य में किन्नर वर्ग से जुड़े कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं:- जैसे गुलाम मण्डी, किन्नर कथा, तीसरी ताली, पोस्ट बाॅक्स नं. 203 नाला सोपारा, यमदीप, तीसरी ताली आदि और कुछ कहानी संग्रह जैसे थर्ड जेन्डर: हिन्दी कहानी, हम भी इंसान हैं, वाङ्मय पत्रिका का किन्नर विशेषांक आदि । हिन्दी साहित्य की इन प्रकाशित रचनाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में किन्नर वर्ग

की पहचान के प्रयास प्रारंभ हो चुके हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी के साहित्य में किन्नर समाज के जीवन के अनेक पहलुओं को उजागर किया गया है। हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन के यथार्थ, उनके समक्ष पेश आने वाली कठिनाईयों और उनकी संघर्षशीलता को रेखांकित किया जा रहा है। किन्नरों का जन्म तो एक सामान्य मानव की तरह ही होता है, परन्तु समाज में उनकी पहचान जाहिर होते ही भेदभाव का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है। किन्नरों को समाज में अपमान भरा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। किरण खान की कहानी 'संझा' में किन्नर के जीवन का दयनीय यथार्थ प्रस्तुत करते हुए लिखा गया है। कहानी में 'संझा' नामक किन्नर के पिता, वैद्यजी, उसे बरसों छिपाकर रखता है। क्योंकि वह नहीं चाहता कि उसकी बेटी संझा किन्नरों जैसा जीवनयापन करें। वह अपनी बेटी संझा को किन्नरों के जीवन यथार्थ बताते हुए कहता है कि "इस घर के बासिन्दों ने तुम्हारी जाति के हलाहल नरक की व्यवस्था की है। उस नरक के लोग पहाड़ी पर तुम्हारे जन्म के सात साल बाद आ कर बस गए हैं। वे लोग कपड़े उठा कर नाचते हैं और भीख माँगते हैं। लोग उन्हें गालियाँ देते हैं, थूकते हैं, उनके मुँह पर दरवाजा बन्द कर लेते हैं, उन्हें घेर कर मारते हैं। वे जिस इलाके में बसे हों, वहाँ कोई भी अपराध हो, इन पर ही इलजाम लगता है। वे डरे और जले हुए लोग अपनी बिरादरी बढ़ाना चाहते हैं।"[4] वैद्यजी के इस कथन से किन्नर जीवन की विडम्बनाओं का बहुत सूक्ष्मता आकलन से किया जा सकता है। किन्नर सदैव भयग्रस्त रहते हैं क्योंकि समाज में रहते हुए उन्हें अनेक प्रकार की चुनौतियों से जूझना पड़ता है। वे आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं होते इसलिए उन्हें लोगों के घर-घर जाकर अपने भौंडे शरीर की नुमाइश कर के और मर्दाना तथा औरताना दोनों ही भाव दिखाकर, अपना मज़ाक उडवाकर अपनी आजीविका अर्जित करने को विवश होते हैं।

भारतीय में समाज में पुरुष होना सबसे उच्च माना जाता है, उसके बाद का दर्जा स्त्री को दिया जाता है, परन्तु किन्नरों को कोई दर्जा प्राप्त नहीं है। वह तो स्त्री जैसे दोयम दर्जे के भी हकदार नहीं माने जाते। शरीरिक से केवल एक अंग के ही अविकसित होने के कारण उन्हें समाज की संरचना के किसी भी तंतु के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। ऐसा माना जाता है कि वह समाज के विकास में किसी प्रकार का योगदान देने में असमर्थ होते हैं। इसलिए उन्हें समाज का हिस्सा नहीं माना जाता। यहां तक कि जिस स्त्री-पुरुष के अंश से किन्नर पैदा होते हैं, वह माता-पिता भी सामाजिक अपमान और वर्जानाओं के कारण उनको तिरस्कृत जीवन जीने के लिए अकेला छोड़ देते हैं। अपने बच्चे के बारे में किन्नर शब्द सुनते ही उनकी सारी संवेदना शून्य में बदल जाती है। शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'बिन्दा महराज' में बिन्दा महराज जैसे किन्नर के माध्यम से समाज की इसी संवेदनशून्यता को रेखांकित किया गया है। शिवप्रसाद सिंह बिन्दा के जीवन के इसी कटु सत्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि "माँ-बाप एक प्राण-हीन शरीर उपजा कर चले गये। मर्द होता तो बीवी-बच्चे होते, पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता, बच्चों की किलकारियांे से आत्मा के कण-कण तृप्त हो जाते। बिन्दा महराज ने ढोलक उठायी और प्यासी आँखों से अपने ही शरीर को देखता गाँव से बाहर हो गया। वह सीधे ठाकुरों के इस गाँव में चला आया था। उसे उम्मीद थी कि नाच-गाकर, भीख माँग कर जिन्दगी के शेष दिन गुजार देगा।"[5] अतः यह तो स्पष्ट है कि पारिवारिक स्नेह और आश्रय के अभाव में किन्नर के रूप में पैदा हुआ बच्चा समाज में नितांत

अकेला हो जाता है। उसे अपनी देह से घिन्न आने लगती है, क्योंकि उसकी दैहिक बनावट के कारण ही उसे अपने परिवार से भी सहानुभूति नहीं मिलती। परिवार से अलग होने पर वह समाज में जीवन को काटने भर के लिए कोई मेहनत मजदूरी भी नहीं कर सकता, क्योंकि समाज में इसकी कोई व्यवस्था ही नहीं है। इसलिए या तो वह भीख मांगता है या फिर अपने शरीर की विकृति को सबके समाने उजागर करता हुआ नाच गाकर अपना जीवनयापन करने के लिए अभिशप्त होता है। किन्नर जीवन की त्रासदी केवल उनके जीवन तक ही सीमित नहीं है, अपितु मरने के बाद भी आम व्यक्ति की भांति अंतेयष्टि भी नहीं होती। मरने के बाद भी उसे अपमानजनक परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। कमल कुमार की कहानी में कुकुज नैस्ट में किन्नर जीवन के इस यथार्थ को उद्घाटित करते हुए लिखा गया है कि "हमारा तो जीवन भी धिक्कार है और मौत भी। कौन ऐसा है जो खुशी से यह सब करेगा। कोई बता रहा था, इनके यहाँ जब किसी की मौत होती है तो उसे रात में श्मशान ले जाया जाता है। उसकी लाश को जूतों से पीटा जाता है। वे मारते हैं और कहते हैं "फिर इस जून में कभी जन्म न लेना।"[6] यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि एक किन्नर को जीवन भर तो यातनामयी जीवन जीना पड़ता है। अनेकों यातनाओं, प्रताड़नाओं और अपमान को सहन करते हुए उसे इस योनि की अवधि को गुजारना पड़ता है, परन्तु इससे भी अधिक अमानवीय व्यवहार उसकी मृत्यु के समय उसके साथ किया जाता है। उसकी शारीरिक अपूर्णता उसके जीवन के साथ-साथ मृत्यु के बाद भी उसके साथ रहती है।

अतः यह समाज का यथार्थ है जो किन्नर के प्रति अमानवता के व्यवहार का अभ्यस्त हो चुका है। समाज निरंतर एक किन्नरों को उनके जीवन का विडम्बना का एहसास करवाता रहता है। समाज का किन्नरों के प्रति अवहेलनापूर्ण व्यवहार उनके जीवन की कठिनाईयों को और भी अधिक बढ़ा देता है। समाज उनकी मानसिक यातना का कारण है। शारीरिक यातना को तो किन्नर अपनी अपूर्णता के आलोक में सहन कर लेते हैं, परन्तु समाज के द्वारा उन्हें जिस मानसिक यातना का शिकार बना दिया जाता है, वह उनके लिए असहनीय होता है। उसे जीवन में स्नेह या सहानुभूति का लेशमात्र अंश भी नहीं होता। वे चाह कर भी किसी से स्नेहपूर्ण सम्बंध नहीं बना सकते। इसीलिए उन्हे मानसिक दंश झेलना पड़ता है। गुरमीत कडिआवली की कहानी 'ओए सोने के कंगना' में बबली किन्नर के माध्यम से किन्नर जीवन की इस विडम्बना को बखूबी चित्रित किया गया है। सोहणी नामक आदमी बबली से प्रेम करता है, परन्तु अपनी शारीरिक अपूर्णता के कारण बबली उसके इस स्नेह संबंध स्वीकार नहीं कर पाती और इसीलिए मानसिक प्रताड़ना से जूझती रहती है। उसकी मानसिक स्थिति का रेखांकित करता हुआ उदाहरण द्रटव्य है:-"लोग समझते हैं कि बबली के पैरों में भूचाल है... पर लोगों को क्या पता कि भूचाल बबली के पैरों में नहीं... बबली के अंदर है, और अंदरूनी भूचाल का नाम है - 'सोहणी।"[7]

बबली जैसे अनेकों किन्नर ऐसी स्थिति में स्वयं को विवश पाते हैं। वह सामान्य मानव की भांति किसी अन्य लिंग के मानव के साथ सम्बन्ध बनाने से ड़रते हैं, क्योंकि हमारी सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी है, जिसमें उन्हें केवल तिरस्कृत योनि के रुप में स्वीकार किया गया है। उन्हें सामान्य मानव की भांति में समाज में विचरण करने का अधिकार नहीं है। इसीलिए वे साधारण मानव की भांति भावनात्मक स्तर पर भी इस समाज का हिस्सा नहीं बन पाते। वे चाहते हुए भी

किसी अन्य सामान्य स्त्री या पुरुष के साथ संवेदनात्मक संबंध बना पाने में स्वयं को अक्षम पाते हैं। उनकी इस मानसिकता के पीछे हमारे तथाकथित समाज की मानसिकता की बहुत बड़ा योगदान है। सामाजिक भेदभाव के कारण ही किन्नर स्वयं को समाज से अलग महसूस करते हैं और नारकीय जीवनयापन करने के लिए अभिशप्त हैं।

किन्नर शारीरिक रूप से चाहे अपूर्ण होते हैं, परन्तु संवेदनात्मक रूप से उनका हृदय साधारण मानव की ही तरह स्पंदित होता है। वह साधारण मानव की ही भांति सुख-दुख, हर्ष, उल्लास, वेदना, पीड़ा और आनन्द को महसूस करते हैं। किन्नर अपने शरीर की अपूर्णता को दरकिनार करके साधारण समाज में प्रविष्ट करते हैं और साधारण मानव की खुशियों में शिरक्त करके उन्हें आशीर्वचन देते हैं। दूसरे की खुशियों में वह अपनी खुशियां खोज लेते हैं। वे समस्त यातनाएं झेलता हुआ भी अपनी जिजीविषा को मरने नहीं देता। अपने आर्थिक अभावों शारीरिक वेदना, सामाजिक प्रताड़ना के बावजूद भी अपनी देह के आश्रय में जीने का रास्ता खोज ही लेते हैं। उनकी इसी जिजीविषा के बलबूते पर ही आज किन्नर वर्ग समाज में अपनी जगह बनाने का प्रयत्न कर रहा है। गरिमा संजय दुबे की कहानी 'पन्ना बा' में किन्नर वर्ग की संवेदना के साथ-साथ जीवन जीने की इसी इच्छा को व्यक्त करते हुए लिखा गया हैः- "कैसा जीवन है प्रभु, कितनी यातना, अपने ही शरीर से घिन की हद तक बेगानापन। कैसे किसी इंसान का मन स्वीकारे मरदाना आवाज, लेकिन कपड़े और श्रृंगार करने का मन औरतों की तरह, दाड़ी मूछों का उगना पुरुष की तरह और शरीर का विकास स्त्री की तरह। कोई काम पर रखे नहीं, कोई माता पिता इस अभिशाप को साथ रखने को राजी नही, कोई नौकरी नहीं, कोई पढाई नहीं, बेचारा मनुष्य जिए भी तो कैसे ? कैसे देह से परे हो, फिर भी जीता है किन्नर, देह का भान है और नहीं भी तो भी क्या ? सारी लाज-शर्म सब त्याग, कितने साहस के साथ निकलता है शगुन गाने, पैसा मांगने, अश्लील हरकतों, व्यंग्यबाण, द्विअर्थी मुस्कानों और दुत्कारों को सहन करता हुआ भी अपनी जिजीविषा को जिंदा रखे हुए।"[8] अतः किन्नर अपनी देह का पोषण करने के लिए प्रत्येक प्रकार की चुनौती का सामना करता है। जीवन जीने की इच्छा के कारण वह प्रत्येक कार्य करता है। उनके जीवन की विडम्बना यह है कि उनके पास जीविकोर्पाजन का कोई साधन नहीं है। उनको न तो कोई काम देता है और न ही सरकार द्वारा उनके लिए कोई खास प्रबन्ध किए गए हैं। इसलिए उनके पास वही देह बाकी बचती है, जिससे वह स्वयं घिन करते हैं। उसी देह का सहारा लेकर वह लोगों के मनोरंजन का साधन बन जाते हैं। परन्तु समाज में उनको कोई स्थान नहीं मिलता, अपितु वह जिस देह के कारण स्वयं को दैहिक शोषण से मुक्त मानते हैं, सामान्य समाज में यथा कदा वह देह भी दैहिक संतुष्टि का सामान बन जाती है। किन्नरों के साथ भी सामान्य समाज द्वारा दैहिक शोषण किया जाता है। जिस प्रकार एक स्त्री पुरुष-प्रधान समाज में सदैव अपनी दैहिक रक्षा के लिए चिंतित रहती है, ऐसी चिंता कभी-कभी किन्नरों को भी होती है। किन्नरों को असभ्य मानने वाले तथाकथित सभ्य समाज में किन्नरों को यह दंश भी झेलना पड़ता है। डा. सूरज बड़त्या की कहानी 'कबीरन' में समाज के इस कृत्य का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। कबीरन किन्नर के साथ दैहिक शोषण किया जाता है। वह अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहती है, "मैं तो औरत हिजड़ा हूं जब अनाथालय में थी तो वहाँ तुम्हारी दुनिया के पुरुष ने ही मुझसे पहली बार बलात्कार किया था। पर मैं किसे बताती कि मेरे

साथ। कौन विश्वास करता कि हिजड़े के साथ बलात्कार हुआ।"[9] उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि कानून व्यवस्था में किन्नरों के आर्थिक भरण-पोषण के लिए तो कोई विशेष कानून नहीं है, परन्तु इसी के साथ उनकी दैहिक प्रताड़ना के संदर्भ में भी कोई कानून नहीं है। यदि कोई किन्नर दैहिक शोषण का शिकार हो जाता है, तो वह कानून से न्याय की मांग भी नहीं कर सकता।

अतः यह स्पष्ट है कि किन्नरों के जीवन की यातना का एक पक्ष नहीं है। वह प्रत्येक पक्ष से पीड़ा सहन करते हैं। सर्वप्रथम अपने परिवार से विलग होने की पीड़ा, फिर समाज में सामान्य मानव की तरह न रह पाने की पीड़ा, फिर अपनी रोज़ी रोटी कमाने के लिए अनिच्छा से चैराहों पर या किसी अन्य की खुशी के समय हाथ फैलाकर और तालियां पीट पीट कर मांगना और फिर समाज में अपनी ही देह का वेष्टन सहकर चुप रहना। किन्नर यह सब दर्द झेलने के लिए अभिशप्त है। इसीलिए उनके मरने के समय उनकी देह को इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने के लिए फिर से पीड़ा दी जाती है ताकि पीड़ा इस चरम तक पहुंच जाए कि दोबारा वह इस रूप में जन्म लेने की सोच भी न सके। किन्नर जीवन की अनेक त्रासदियां हैं। समकालीन हिन्दी कहानी में इन सब पक्षों को यथार्थ और संवेदना के धरातल पर चित्रित करने का प्रयास किया जा रहा है। अभी इस संदर्भ में विपुल मात्रा में साहित्य तो नहीं लिखा गया है, परन्तु फिर भी समकालीन हिन्दी कहानी के माध्यम से किन्नर वर्ग की पहचान स्थापित हो रही है। साहित्य के माध्यम से उनकी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को सामान्य समाज तक पहुंचाने का कार्य किया जा रहा है। सरकार द्वारा भी उन वर्ग विशेष के उद्धार के प्रयास किये जा रहे हैं। समाज में किन्नर वर्ग के प्रति जागरूकता की आवश्यकता है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि निःसंदेह समकालीन हिन्दी कहानी के माध्यम इस जागरूकता का शुभारम्भ हो रहा है।

संदर्भ सूची :

1. एम. फ़ीरोज़ खान (सम्पादक), हम भी इंसान हैं, अलीगढ़: वाङ्मय बुक्स, 2018, भूमिका, पृष्ठ-3.
2. महेन्द्र भीष्म, किन्नर कथा, दिल्ली: सामयिक पेपरबैक्स, पृ.-92.
3. एम. फ़ीरोज़ खान (सम्पादक), थर्ड जेन्डर: हिन्दी कहानियाँ, कानपुर: अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2017, पृ.-56.
4. वही, पृ.-65.
5. वही, पृ.-26.
6. एम. फ़ीरोज़ खान (सम्पादक), हम भी इंसान हैं, अलीगढ़: वाङ्मय बुक्स, 2018, पृ.-2.
7. वाङ्मय (खण्ड-दो), एम. फ़ीरोज़ खान, थर्ड जेन्डर: अनूदित कहानियां (हिजड़ों पर केन्द्रित अंक), अलीगढ़ , अप्रैल-जून 2017, पृ.-85.
8. एम. फ़ीरोज़ खान (सम्पादक), थर्ड जेन्डर: हिन्दी कहानियाँ, कानपुर: अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2017, पृ.-121.
9. एम. फ़ीरोज़ खान (सम्पादक), हम भी इंसान हैं, अलीगढ़: वाङ्मय बुक्स, 2018, पृ.-17.

•